LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 4: ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

3/4 (श्लोक 21-31), शनिवार, 26 अप्रैल 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/pOlPHt0f6_c

सर्वश्रेष्ठ योगी के लक्षण

हनुमान चालीसा पाठ, दीप-प्रज्वलन्, देव-वन्दना, भगवान श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, भगवान वेदव्यास और सद्गुरु श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज का वन्दन करते हुए आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुःगुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुःसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

कर्मयोग नाम तीसरे अध्याय का है। **'ज्ञानकर्मसन्नयासयोग' व 'कर्मसंन्यासयोग'** नाम से चौथा व पाँचवा अध्याय कर्मयोग की ही विस्तृत व्याख्या है। श्रीभगवान् ने कर्मयोग के बाद अर्जुन को इस योग का इतिहास बताना प्रारम्भ किया कि अर्जुन से पहले यह योग भगवान जी ने विवस्वान अर्थात् सूर्य भगवान् को सुनाया था, उनसे इक्ष्वाकु महाराज ने इस ज्ञान को प्राप्त किया। उनसे ब्रह्मऋषियों एवम् राजऋषियों ने जानकर इसका प्रचार-प्रसार किया। काल के प्रवाह में ज्ञान नष्ट नहीं हो सकता, स्मृति से ओझल होता प्रतीत हुआ। श्रीभगवान् ने ज्ञान का पुनर्स्मरण कराने के लिये अर्जुन को बताना प्रारम्भ किया।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को निमित्त बनाकर श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान दिया। गीताजी ग्रन्थ या पुस्तक नहीं हैं। श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान् का साक्षात वाङ्मय स्वरूप है। अर्जुन को मोह के अज्ञान से बाहर निकालने के लिये उन्होंने गीतोपदेश दिया।

"भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।"

श्रीभगवान् अर्जुन को कहते हैं कि यह उत्तम रहस्य तुम्हें बता रहा हूँ क्योंकि तुम मेरे प्रिय सखा हो। इस प्रकार अर्जुन के माध्यम से गूढ़ रहस्य बता कर श्रीभगवान् ने हम पर महती कृपा की है कि हम भी गीता जी पढ़ रहे हैं।

इसी का विस्तार करते हुये आगे बताया कि कर्म की गति बड़ी न्यारी अर्थात् बहुत कठिन है। श्रीभगवान कहते हैं-

"कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।"

हर क्षण मनुष्य कर्म करता रहता है लेकिन इस को समझना इतना आसान नहीं है। उसके पश्चात श्रीभगवान् कहते हैं-

“कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।

स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।”

शब्दशः अर्थ देखते जाए तो जो कर्म में अकर्म देखता है और अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है। यहाँ देखता का अर्थ ज्ञान चक्षुओं से अनुभव करना है। जैसे हमारे आसपास में वायु है, इसको हम स्पर्श से जानते हैं, वैसे ही उस वायु में प्राणवायु है, ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन वायु हैं, उनको तो न तो देख सकते हैं, न सुन सकते हैं और न स्पर्श कर सकते हैं। ये हम ज्ञान चक्षुओं से देख सकते हैं। उसी प्रकार से देखने का अर्थ है अनुभव करना। सब कुछ करते हुए भी जो कार्य हो रहा है, यह मेरे शरीर के द्वारा होने वाला कार्य है, इसका कर्त्ता मैं नहीं हूँ, मेरी उपस्थिति मात्र के कारण हो रहा है लेकिन मैं इसका कर्त्ता नहीं हूँ। दीपक के प्रकाश में घर का कार्य चलता है, घर का कार्य दीपक नहीं करता, दीपक के प्रकाश के कारण वह कार्य होता है। सूर्य के प्रकाश के कारण पृथ्वी पर हमारे जीवन का कारोबार चलता है। इसी प्रकार हम देह में हैं इसलिए देह के द्वारा कार्य हो रहा है। इसके कर्त्ता हम नहीं हैं। इस बात को ज्ञान रूप से समझना चाहिए कि यह अनुभूति होती है क्या कि मैं चैतन्य हूँ।

कुछ न करते हुए भी सारे कार्य अपने आप होते जाते हैं यह बात जो समझ गया वह श्रीभगवान् को प्राप्त होता है। जो तुम कहते हो मैंने किया तो मेरे अन्दर भी आप रहते हैं और मेरे भीतर बैठकर सब काम आपने ही किया। कर्म करते हुए यह भाव जब मन में आ जाता है कि यह काम मैंने नहीं किया तब वह अकर्म हो जाता है। वह मनुष्य ज्ञानी कहलाता है।

“यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।”

जिसके सारे कार्य स्वार्थ रहित होते हैं, वह समारम्भ कहलाता है। जो सारे कार्य कर्त्तव्य मान कर करता है उसे कर्म फल की इच्छा नहीं होती। स्वार्थ को त्याग कर जब कोई परिवार, समाज, राष्ट्र के लिये, सारे संसार के कल्याण के लिये कार्य करता है, वह कामना नहीं कहलाती।

‘ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।’

यह इच्छा है परन्तु कामना नहीं है। सबके कल्याण की इच्छा सङ्कल्प नहीं अपितु ध्येय कहलाती है। उसको स्वयम् के लिये कुछ नहीं चाहिये होता है। मेरे शरीर के द्वारा यह हो रहा है किन्तु उसका कर्त्ता मैं नहीं हूँ, यह ज्ञान जिसे होता है उसके सारे कर्म जलकर भस्म हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को ज्ञानी लोग पण्डित कहते हैं

पण्डित का अर्थ है जिसकी प्रज्ञा जागृत हो गई। उसको सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होतें हैं और सब परमात्मा के कार्य समझ कर करता जाता है। मेरे द्वारा हो रहा है इस भाव का त्याग करता जाता है। उसको ज्ञानी भी पण्डित कहते **हैं।**

“त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः।।”

श्रीभगवान् सर्वश्रेष्ठ योगी के लक्षण बता रहे हैं। कर्म से मुझे क्या मिलेगा, उसके प्रति अनासक्ति होना चाहिए। जो मुझे मिलेगा मुझे उसके फल का चिन्तन नहीं करना चाहिए। जो मिला ठीक है, इसलिए मैं वह करूँगा जो मेरा कर्त्तव्य है, इसलिए मै करूँगा और मैं सन्तुष्ट हूँ।

वह किसी पर निर्भर रहकर कर्म नहीं करता। वह त्याग के भाव से कर्म करता है। वह सच्चिदानन्द के अंश का अनुभव करता है।

उसे अच्छा कार्य़ करने का आनन्द मिलता है। वह सदा परमात्मा के साथ रहता है।

4.21

निराशीर्यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं(ङ्) केवलं(ङ्) कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥21॥

जिसका शरीर और अन्तःकरण अच्छी तरह से वश में किया हुआ है, जिसने सब प्रकार के संग्रह का परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित कर्मयोगी केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पाप को प्राप्त नहीं होता।

विवेचन- निराशीर् अर्थात् अपेक्षा नहीं रखने वाला, **यतचित्तात्मा** अर्थात् अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने वाला, ये सब करने के लिए अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना पड़ता है। इन्द्रियों और मन पर कैसे नियन्त्रण करना है? यह सब **आत्मसंयमयोग** नामक छठे अध्याय में श्रीभगवान् ने बताया है। आत्मसंयम करके इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके सभी प्रकार के सङ्ग्रह (यह चाहिए, वह चाहिए) सभी का त्याग करके, शरीर से कर्म करता रहता है परन्तु उसमें अटका नहीं रहता है। अच्छे और बड़े कर्म करके उन्हें भूल भी जाता है तो उससे ऐसे कर्मों को करने में कोई चूक भी हुई हो तो उसे दोष नहीं लगता है। वह उन सारे कर्मों के कारण होने वाले पापों से भी मुक्त हो जाता है। ये सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी और योगी के लक्षण हैं।

गीता परिवार के अनेक कार्यों मे से हम कुछ भी कार्य कर सकते हैं। रास्ते मे पड़ा कचरा उठा कर कचरे के डिब्बे में डालना भी सेवा है।

संन्यासी को पहले कर्मयोगी होना पड़ता है। श्रेष्ठ संन्यासी और योगी के लक्षण सुनकर हमारे लिये साधना के मार्ग बन जाते हैं। सिद्धों के लक्षण हमारे लिये उदाहरण बन जाते हैं, उसमें से जितना बन सके ग्रहण करना चाहिये। शरीर के द्वारा कर्म करके कुछ दोष रह जाने पर उसका पाप नहीं लगता। शरीर कर रहा है, यह भाव महत्त्वपूर्ण है

दो संन्यासी वन से जा रहे थे, शिष्य आगे-आगे गुरु जी के लिये मार्ग स्वच्छ करता जाता था। मार्ग में एक नदी दिखाई दी, बहाव तेज था। एक युवती ने हाथ पकड़ कर नदी पार कराने के लिए मदद माँगी क्योंकि नदी के तेज बहाव में उसको बह जाने का डर था। घर में उसका छोटा बालक दूध के लिए रोता होगा, उसको घर जाने की जल्दी थी। पहले संन्यासी ने नारी का स्पर्श स्वयम् के लिए निषिद्ध मानकर मना कर दिया। वह स्त्री रोने लगी। तभी दूसरे संन्यासी जो पहले संन्यासी के गुरु थे, वहाँ आए। युवती ने अपनी समस्या बता कर उनसे भी नदी पार करने हेतु सहयोग माँगा, गुरुजी ने उसका हाथ पकड़कर नदी पार करा दिया। दूसरे दिन आश्रम में शिष्य ने पूछा, गुरुदेव! आपने संन्यास दीक्षा के समय बताया था कि युवती का स्पर्श नहीं करना है फिर आपने ऐसा क्यों किया? गुरुजी बोले मैंने तो उसे वहीं छोड़ दिया और तुम उसे अभी भी पकड़ कर बैठे हो।

इस तरह कर्मयोगी कर्म करके भूल जाता है। मनुष्य मन से पकड़ कर रखता है। शरीर से कर्म करने से पाप नहीं लगता।

4.22

यदृच्छालाभसन्तुष्टो, द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः(स्) सिद्धावसिद्धौ च, कृत्वापि न निबध्यते॥22॥

जो (कर्मयोगी) फल की इच्छा के बिना, अपने-आप जो कुछ मिल जाय, उसमें सन्तुष्ट रहता है और जो ईर्ष्या से रहित, द्वन्द्वों से अतीत तथा सिद्धि और असिद्धि में सम है, वह कर्म करते हुए भी उससे नहीं बँधता।

विवेचन- यदृच्छा का अर्थ है अपने-आप। श्रीभगवान् बताते हैं कि हमने कोई कर्म किया और उसका फल अपने आप प्राप्त हो गया, उसी में हम सन्तुष्ट हैं क्योंकि हमने किसी भी प्रकार के फल की अपेक्षा नहीं की थी। इसी कारण से जो मिला उसी में हम तृप्त हैं। यहाँ फल का अर्थ मात्र लाभ नहीं है। यदि हानि भी हुई तो भी सन्तुष्ट ही रहना है।

सन्तों के जीवन में ऐसे बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। वे सत्कार्य करने जाते है, परन्तु लोगों से उन्हें अपयश ही हाथ लगता है।

परमपूज्य गोलवलकर गुरुजी के जीवन का प्रसङ्ग है। वे तमिलनाडु गये थे। वहाँ हिन्दी भाषा का विरोध चल रहा था। विरोध प्रदर्शन में कुछ व्यक्तियों ने हाथों में काले झण्डे लेकर "गोलवलकर गुण्डा है" - ऐसे नारे लगाना आरम्भ कर दिया। इस परिस्थिति में हम विचलित हो जाते, परन्तु गुरुजी ने इसे भी सकारात्मक रूप से लिया और कहा कि चलो इस बहाने ये लोग इतनी हिन्दी तो बोलने लगे।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो अर्थात् किसी के अपशब्दों को भी ज्ञानी अच्छे रूप में ही लेते हैं। ऐसे व्यक्ति द्वन्द्व से मुक्त रहते हैं। जब हम परमात्मा के कार्य में लग जाते हैं तब सारे मार्ग अपने आप दिखने लगते हैं।

द्वन्द्वातीत - द्वन्द्व के पार चले जाते हैं।

विमत्सर: - मतः सरति इति विमत्सरः

श्रीभगवान् बताते हैं कि कोई हमारे साथ चल रहा है अथवा पीछे चल रहा है तो कोई बात नहीं किन्तु यदि कोई हमारे आगे चल रहा है तो हमारे मन में द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जिस व्यक्ति के मन में अपने-पराये का भाव ही नहीं रह गया है उसे मत्सर नहीं होगा। द्वैत का भाव ही उस व्यक्ति के मन में समाप्त हो गया तो मत्सर के लिए कारण ही नहीं रह जाता।

इस अध्याय का नाम ही *__ज्ञानकर्मसंन्यासयोग__* - है। यदि किसी व्यक्ति को इसका अर्थ भी ज्ञात हो गया तो उसके लिये तो सब परमात्मा ही हैं। द्वैत का भाव ही नहीं रहा। सब कुछ एक ही हो गया है।

हे विश्वची माझे घर

यह सारा विश्व ही मेरा परिवार है।

***अयं निजः परोवेति, गणना लघु-चेतसाम् ।**
उदाराचरितानाम् तु *वसुधैव कुटुम्बकम् ।।***

यह मेरा है अथवा दूसरे का है, यह गणना लघु हृदय के व्यक्ति करते हैं। उदार चरित्र वालों के लिये तो समस्त विश्व ही उनके कुटुम्ब के समान है।

जब सारा संसार और हम एक ही हो गये हैं तो मैं का भाव ही नहीं आएगा और द्वैत का भाव नहीं रहा तो मत्सर भी नहीं रहेगा। प्राय: देखा जाता है कि घनिष्ठ मित्र होने पर भी कभी-कभी मतभेद हो जाते हैं तो दुःख होता है किन्तु यदि वह आगे निकल जाता है तो और दुःख होता है।

वह व्यक्ति कार्य की सिद्धि-असिद्धि में भी सम है। कार्य पूर्ण हुआ अथवा नहीं, अभी नहीं हुआ तो बाद में कर लेंगे।

ऐसा व्यक्ति कर्म करके भी उसके बन्धनों में नहीं बँधता है।

4.23

गतसङ्गस्य मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः।

यज्ञायाचरतः(ख्) कर्म, समग्रं(म्) प्रविलीयते॥23॥

जिसकी आसक्ति सर्वथा मिट गयी है, जो मुक्त हो गया है, जिसकी बुद्धि स्वरूप के ज्ञान में स्थित है, ऐसे केवल यज्ञ के लिये कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, यज्ञ के भाव से जब मनुष्य कर्म करने लगता है तो कर्म से जिसकी आसक्ति छूट गई है, जो मुक्त है। मैं कौन हूँ, यह ज्ञान प्राप्त कर जो उस अवस्था में रहता है, उसका चित्त सदा ज्ञान की अवस्था अर्थात् परमात्मा में रहता है। वह सोचता है कि सारे कार्य परमात्मा की उपस्थिति मानकर शरीर के द्वारा हो रहे हैं। मैं कर्त्ता नहीं हूँ। परमात्मा का कार्य जानकर सबके कल्याण के लिये कार्य करता है, परन्तु कर्त्ता का भाव नहीं रखता, उसके सभी कार्य यज्ञ हो जाते हैं। यज्ञ में आहुति अर्पण के समान वह कार्य अर्पण कर देता है और ऐसा करने से वह कार्य ज्ञानाग्नि में विलीन हो जाता है। यज्ञ बन जाता है।

"**तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यमं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।**

तीसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने बताया कि ब्रह्म सर्वत्र है, वह नित्य यज्ञ में स्थित है। हमारा प्रत्येक कार्य यज्ञ के भाव से हो। ऐसा मनुष्य आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

4.24

ब्रह्मार्पणं(म्) ब्रह्म हविः(र्), ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं(म्), ब्रह्मकर्मसमाधिना॥24॥

जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवी भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है, (ऐसे यज्ञ को करने वाले) जिस मनुष्य की ब्रह्म में ही कर्म-समाधि हो गयी है, उसके द्वारा प्राप्त करने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

विवेचन- हमारे कर्म इस तरह हों कि जो मैं कर रहा हूँ या जो कर्म मैं कर रहा हूँ वह ब्रह्म है, जैसे हम यज्ञ करते हैं, यज्ञ में यज्ञ द्रव्य अर्पण करते हैं, साकल्य, धृत, समिधा आदि। मेरे द्वारा जो कर्म किया जा रहा है वह भी ब्रह्म ही है। अग्नि ही ब्रह्म है। मन ही मन में उसकी आहुति देना, उसके लिए हमें अग्नि प्रज्वलित करने की भी आवश्यकता नहीं है। मन ही मन में अर्पण करना। मैं भी उसी का अंश हूँ।

"अहम् ब्रह्मास्मि"

वेदों के मन्त्र हैं, जो अर्पण करने वाला है, जिसको अर्पण कर रहे हैं, वह सब ब्रह्म है, इस भाव से जब अर्पण किया जाता है तो वह परम ब्रह्म को ही प्राप्त होने वाला है। यज्ञकर्म करने वालों की यही सोच होती है। इस श्लोक को भोजन से पहले बोलने की भी पद्धति है। यह भोजनमन्त्र के रूप में भी कहा जाता है।

वदनी कवळ घेता नाम घ्या श्रीहरीचे।
सहज हवन होते नाम घेता फुकाचे।।
जीवन करी जीवित्वा अन्न हे पूर्णब्रम्ह ।
उदरभरण नोहे जाणिजे यज्ञकर्म।।"

श्रीभगवान् का नाम स्मरण करके हम भोजन करते हैं तो वह एक प्रकार का यज्ञ ही होता है।

उधर भरण नववीचे।

भोजन करना अर्थात् पेट भरना नहीं है। हमारा भोजन भी इसी भाव से होना चाहिए कि यह यज्ञ हो रहा है।

कशासाठी घड़ों माजिया देश सेवा।

मेरे द्वारा कोई देश सेवा हो जाए, इसलिए यह भोजन कर रहा हूँ। इस भाव से भोजन करते हैं तो वह भी ही यज्ञ है। आप जो भी काम करते हैं, वह यज्ञ बन जाता है। हमारे जीवन के सारे उपकरण भी ब्रह्म ही हैं। जो भी साधन हमें कार्य करने के लिए मिले हैं, वे भी ब्रह्म ही हैं। दशहरे पर हम अस्त्र-शस्त्र की पूजा करते हैं। विश्वकर्मा जयन्ति पर हम उपकरणों की पूजा करते हैं। यह हमें यज्ञ करने के लिए मिले उपकरण हैं। वे भी ब्रह्म हैं, इसलिए हम उनकी पूजा करते हैं।

यह भाव जागृत करने के लिए ही करते हैं। जो भी उपकरण साधन मुझे प्राप्त हुए हैं, ये परमात्मा का स्वरूप ही हैं। जो वाहन स्कूटर, कार, साइकिल मुझे प्राप्त है, वह श्रीभगवान् का कार्य करने के लिए ही हैं। उन्हीं का स्वरूप है। हर वस्तु को देखते समय यही भाव हो कि ये सब ब्रह्म हैं।

4.25

दैवमेवापरे यज्ञं(म्), योगिनः(फ्) पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं(म्), यज्ञेनैवोपजुह्वति॥25॥

अन्य योगी लोग भगवदर्पण रूप यज्ञ का ही अनुष्ठान करते हैं और दूसरे योगी लोग ब्रह्मरूप अग्नि में विचाररूप यज्ञ के द्वारा ही जीवात्मा रूप यज्ञ का हवन करते हैं।

विवेचन- कुछ लोग देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते हैं। ज्ञान के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में परमात्मा को अर्पण करना, यह यज्ञ भी यज्ञ में अर्पण करने के समान हो जाता है। अपना कर्त्तव्य कर्म करना मतलब यज्ञ। उसकी व्याख्या तीसरे अध्याय में बताई गई है। हम जो भी अपना कर्त्तव्य कर्म करते हैं, वह भी यज्ञ है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।
3.10

तीसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने कहा है, हर जीव के जन्म के साथ ही उसका कर्त्तव्य कर्म जन्म लेता है। यज्ञ परमात्मा को अर्पण करना अर्थात् यज्ञ को यज्ञ में अर्पण करना।

हे मातृभूमि तुजला मन वाहियेले
वक्तृत्व वाक्-विभव ही तुज अर्पियेले
तुंतेंची अर्पिली नवी कविता वधूला
लेखां प्रति विषय तूची अनन्य झाला॥
त्वत्-स्थंडिली ढकलली गृह-वित्त-मत्ता
दावानालात वहिनी नव-पुत्र-कांता
त्वत्-स्थंडिली अतुल-धैर्यनिष्ठ बंधू
केला हवि परम कारुण पुण्यसिंधू॥

सावरकर जी कहते हैं, हे मातृभूमि! मैंने अपना मन आप में ही अर्पण कर दिया है। वक्तृत्व- कला जो मुझे प्राप्त हुई है, जो भी भाषण करूँगा, हे मातृभूमि! वह आपको ही अर्पित है। यह भगवती है, परमात्मा है। कविता रसाल- जो भी कविता करूँगा, हे मातृभूमि! वह आपको ही अर्पित है।

राष्ट्रीय स्वाहा राष्ट्र आदमी न मां

मेरा जीवन राष्ट्र को अर्पण। यह सब कुछ राष्ट्र का है, मेरा कुछ नहीं। हमारा सारा जीवन ही यज्ञमय हो सकता है। हमारे सारे कर्म भी यज्ञ हो सकते हैं।

4.26

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये, संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य, इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥26॥

अन्य योगी लोग श्रोत्रादि समस्त इन्द्रियों का संयमरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं और दूसरे योगी लोग शब्दादि विषयों का इन्द्रियरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं।

विवेचन- श्रोत्रादीनि - श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, त्वचा और नेत्र - सारी इन्द्रियाँ आ जाती हैं। कुछ व्यक्ति इतना संयम रखते है कि उनकी सारी इन्द्रियाँ ही ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देते हैं।

कड़क व्रत - कठिन व्रत के द्वारा सुनने में, देखने में, खाने में संयम का पालन करते हैं कि मानों वे अपनी इन्द्रियाँ ही संयम रूपी अग्नि में अर्पित कर देते हैं।

शब्दादीन्विषयानन्य - कुछ व्यक्ति विषयों को ही अर्पित कर देते हैं।
कर्ण का विषय है- सुनना।
जिह्वा का विषय है रस और शब्द ।
त्वचा का विषय है स्पर्श ।
नेत्रों का विषय है दृश्य।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इन सारे विषयों का ही हवन कर देते हैं अर्थात् विषयों को इन्द्रियों तक भी नहीं पहुँचने देते हैं।

विषयों का सेवन करते ही उनका हवन कर देते हैं। उन विषयों का स्मरण भी उन्हें नहीं होता। हम तो एक बार स्वाद चखने के बाद कई दिनों तक उसका स्मरण करते रहते हैं। ज्ञानी व्यक्ति विषयों का सेवन करते ही उन्हें भस्म कर देते हैं।

वहीं इन्द्रिय रूपी अग्नि में विषयों को भस्मसात् करना और संयमरूपी अग्नि में इन्द्रियों को भी भस्मसात् कर देना, ये अत्यन्त तीव्र संयम करने वाले लोग हैं, ये एक प्रकार से हवन ही करते हैं।

4.27

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति ज्ञानदीपिते॥27॥

अन्य योगी लोग सम्पूर्ण इन्द्रियों की क्रियाओं को और प्राणों की क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयमयोग रूप अग्नि में हवन किया करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि अन्य योगी व्यक्ति ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयमयोग रूपी अग्नि में इन्द्रियों द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं तथा प्राणों द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं को हवन कर देते हैं। उन्हें अपने स्वयं के लिए कुछ नहीं चाहिए, बल्कि वे सबके कल्याण के लिए कार्यरत रहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता का सम्पूर्ण छठा अध्याय इस एक शब्द पर आधारित है-

"आत्मसंयमयोगोनाम षष्ठोध्यायः"

आत्मसंयम का अर्थ है स्वयं पर नियन्त्रण। सर्वप्रथम अपने शरीर पर, तदुपरान्त इन्द्रियों पर तथा फिर मन एवं बुद्धि पर पूर्णतः विजय प्राप्त करना ही आत्मसंयम है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसे बहुत से यज्ञ हैं।

4.28

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतयः(स्) संशितव्रताः॥28॥

दूसरे कितने ही तीक्ष्ण व्रत करने वाले प्रयत्नशील साधक द्रव्य-सम्बन्धी यज्ञ करने वाले हैं, और कितने ही तपोयज्ञ करनेवाले हैं, और दूसरे कितने ही योगयज्ञ करनेवाले हैं, तथा कितने ही स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति अलग-अलग प्रकार के यज्ञ करते हैं। कुछ व्यक्ति द्रव्ययज्ञ करते हैं, यज्ञ में द्रव्य अर्पण कर देते हैं। दान-धर्म करना भी यज्ञ है। अनेक व्यक्ति समाज के हितार्थ दान करते हैं, यह दानयज्ञ होता है। उनकी भावना यह होती है कि मैंने जिस समाज से यह सब प्राप्त किया है, उसके लिए कुछ देना चाहिए। हमारे ऊपर चार प्रकार के ऋण रहते हैं-

देवऋण-
देवता, जिनके माध्यम से हमें वायु, जल आदि प्राप्त होता है। जल देवता, वरुण देवता आदि हमारे लिए अनेक कार्य करते रहते हैं, जिसका हमें भान तक नहीं होता। हमें लगता है कि सब कुछ हम करते हैं। इनका भी हमारे ऊपर ऋण है।

क्या धरा हमने बनायी,
क्या बुना हमने गगन,
क्या हमारी ही वजह से,
बह रहा सुरभित पवन?

यह सब देवताओं की कृपा से हो रहा है इसलिए हम नदियों को नदी न कह कर माँ कहते हैं, जैसे गङ्गा माँ, गङ्गा मैया, यमुना मैया आदि।
इस प्रकार इन सभी देवताओं के ऋण चुकाने के लिए भी यज्ञ किए जाते हैं।

ऋषिऋण-
ऋषि तथा वैज्ञानिक आदि जो हमारा जीवन सुखमय बनाने के लिए तथा सबके कल्याण के लिए अपनी भूख-प्यास भूलकर लगातार कार्यरत रहते हैं, उनका भी हमारे ऊपर ऋण होता है।

समाजऋण-
जिस समाज में हम रहते हैं, उस समाज से हम बहुत कुछ प्राप्त करते हैं। जो वस्त्र हम पहनते हैं, उसके लिए किसी कृषक ने धूप में तपते हुए कपास उगायी है, किसी ने उस कपास का धागा बुना, किसी ने उसका वस्त्र बुना तथा किसी ने उसे रङ्गा, फिर किसी ने उसका वस्त्र सिला। इस प्रकार एक कार्य के लिए समाज के अनेक व्यक्ति जुड़े होते हैं। ऐसा नहीं होता कि हमने धन देकर इसे क्रय कर लिया तो यह हमारा है। इन सभी का ऋण हम पर होता है इसलिए जिस समाज से हम इतना सब प्राप्त करते हैं, उस समाज को कुछ न कुछ देने की या उसके लिए कुछ करने की भावना हमारे अन्दर होनी चाहिए।

पितृऋण-
हमारे माता-पिता हमें जन्म देते हैं तथा हमारा भरण-पोषण करते हैं, अतः उनका ऋण हमारे ऊपर होता है।

हमें इन सब प्रकार के ऋणों को चुकाने के लिए यज्ञ करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें **योगयज्ञ** करते रहना चाहिए।

स्वाध्याय रूपी ज्ञानयज्ञ करते रहना चाहिए। स्वाध्याय का अर्थ है अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करना। श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस, महाभारत आदि का अध्ययन तथा महान सन्तों के चरित्र पढ़ना भी स्वाध्याय यज्ञ है। भक्ति तथा ज्ञान के प्रसार के लिए श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ना भी गीता परिवार द्वारा चलाया जाने वाला ज्ञानयज्ञ है।

तपोयज्ञ-
तप का अर्थ है अपना कर्त्तव्य करने के लिए शरीर को दिया गया कष्ट। यह भी यज्ञ है। तप की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

तपः स्वधर्मवर्तित्वं।

योग में भी अनेक क्रियाएँ होती हैं। जब हम प्राणायाम करते हैं तो प्राणायाम भी एक यज्ञ ही है।

4.29

अपाने जुह्वति प्राणं(म्), प्राणेऽपानं(न्) तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः॥29॥

दूसरे कितने ही प्राणायाम के परायण हुए योगी लोग अपान में प्राण का पूरक करके, प्राण और अपान की गति रोककर फिर प्राण में अपान का हवन करते हैं; तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में हवन किया करते हैं। (ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।)

विवेचन- हमारे शरीर में अलग-अलग प्रकार की वायु है। हम जब श्वास लेते हैं तब प्राणवायु को अन्दर लेते हैं तब अपान वायु में प्राणवायु का हवन हो गया। फिर जब हम श्वास छोड़ते हैं तो प्राणवायु में अपानवायु का हवन करते हैं। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास भी यज्ञ है।

प्राणायाम करते समय अन्तःकुम्भक तथा बहिर्कुम्भक, अर्थात् श्वास अन्दर लेने के पश्चात बन्ध लगाकर उसे रोकना तथा श्वास छोड़ने के पश्चात रोकना होता है। ये सारी क्रियाएँ योग प्रशिक्षक से सीख कर ही करनी चाहिए। यह भी यज्ञ ही है। प्राण तथा अपान की गति में अवरोध उत्पन्न करना भी एक प्रकार का यज्ञ है।

4.30

अपरे नियताहाराः(फ्), प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो, यज्ञक्षपितकल्मषाः॥30॥

दूसरे कितने ही प्राणायाम के परायण हुए योगी लोग अपान में प्राण का पूरक करके, प्राण और अपान की गति रोककर फिर प्राण में अपान का हवन करते हैं; तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् "आहार पर नियन्त्रण" के विषय में बता रहे हैं। आहार का अर्थ केवल भोजन नहीं बल्कि हमारी समस्त इन्द्रियों के भी आहार होते हैं।

नेत्रों का आहार दृश्य है।
कर्ण का आहार शब्द है।
नासिका का आहार गन्ध है।
त्वचा का आहार स्पर्श है।

जिह्वा का आहार स्वाद है।

यह सब संयमित तथा नियन्त्रित होना आवश्यक है। आहार पर हमारा नियन्त्रण होना आवश्यक है, यह भी यज्ञ है। हमें कितने समय तक टीवी देखना है या कितने समय तक फोन चलाना है, यह भी नियन्त्रित होना चाहिए।

ये सब, अलग-अलग प्रकार के यज्ञ करने वाले ही यज्ञविद् होते हैं। यदि यह सब जानकार हम अपनी प्रत्येक क्रिया करेंगे तो हम भी यज्ञविद् हो जाएँगे। तभी हमारे समस्त कल्मष अर्थात् हमारे समस्त पाप नष्ट हो जाएँगे। यज्ञ करने से हमारा अन्तरङ्ग शुद्ध हो जाता है तथा तब हमें सर्वत्र व्याप्त परमात्मा का अपने ही अन्तरङ्ग में दर्शन हो जाता है।

4.31

यज्ञशिष्टामृतभुजो, यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं(म्) लोकोऽस्त्ययज्ञस्य, कुतोऽन्यः(ख्) कुरुसत्तम॥31॥

हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं। यज्ञ न करने वाले मनुष्य के लिये यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा?

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् ने बहुत महत्त्वपूर्ण बात बता दी है। श्रीभगवान् कहते हैं-

"हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं। अपने जीवन के समस्त कार्य इस भाव से करने वाला व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत केवल स्वार्थ भाव से जीवन जीने वाले व्यक्ति तथा यज्ञ न करने वाले व्यक्ति के लिये यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा?"

हमें इस जीवन में प्रतिदिन कम से कम एक कार्य ऐसा करना चाहिए जो यज्ञ भाव से हो, उससे कुछ भी अपेक्षा न रखते हुए किया जाए तो धीरे-धीरे यह जो सर्वोच्च अवस्था श्रीभगवान् ने बतायी है, उस सनातन परब्रह्म को प्राप्त कर सकेंगे।

आज यहाँ से हम श्रीमद्भगवद्गीता से यह सङ्कल्प लेकर जाएँ कि प्रतिदिन एक ऐसा कर्म अवश्य करेंगे और उसे आचरण में लाएँगे। पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता तीन प्रकार से समझी जाती है-

गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें।

पहले स्वयं पढ़ें क्योंकि पढ़ाने के लिए उसे अच्छी तरह से पढ़ना पड़ता है। इसके उपरान्त यदि हम कुछ यत्न करेंगे तो जीवन में उतार पाएँगे। यही शक्ति तथा प्रेरणा श्रीभगवान् हमें दें, ऐसी प्रार्थना उनके चरणों में करते हुए सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- राघवेन्द्र भैया

प्रश्न- बाईस अप्रैल की घटना घटित होने के समय यदि कोई गीताज्ञानी वहाँ होता तो क्या कर सकता था? ऐसी परिस्थिति में वह स्थितियों को आध्यात्मिक शक्ति से परिवर्तित कर सकता था क्या?

उत्तर- ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी आध्यात्मिक पुरुष विचलित नहीं होता। सरदार भगतसिंह जी को पता था कि उनको कुछ ही समय में मरना है, फिर भी उनके शरीर का प्रत्येक अङ्ग सुचारु रूप से कार्य कर रहा था। वे पूर्ण शान्त थे। चिकित्सक के पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे कोई मार कर नष्ट नहीं कर सकता है। मैं पुन: जन्म लेकर मातृभूमि की सेवा करूँगा।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रग्यावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:।।

समझदार व्यक्ति जीवित या मृत व्यक्ति के लिये शोक नहीं करते। अपने कार्य को करना ही हमारा धर्म है। पुरुष शोक तो करे किन्तु विषाद में न डूबे, यही हमारा कर्त्तव्य है।

प्रश्नकर्ता- अमिता दीदी

प्रश्न- खण्ड में रामायण पढ़ते समय आरम्भ में किया जाने वाला आह्वन अन्त में करना चाहिये या प्रथम दिन ही करना चाहिये?

उत्तर- प्रारम्भ करते समय ही आह्वान करना उचित होगा।

प्रश्न- हम प्रतिदिन किये जाने वाले कार्यों को प्रतिदिन सायं प्रभु के चरणों में अर्पित कर देते हैं, तो क्या वे विलीन हो जाते हैं?

उत्तर- श्रीभगवान् के चरणों में अर्पित प्रत्येक कर्म अर्पित हो जाता है। किन्तु यह कार्य मैंने किया, मुझे इसका क्या फल मिलेगा, यह भाव नहीं होना चाहिये। यदि मेरे कार्य से किसी का हित हो तो उसे भी प्रतिदिन अर्पित कर देना चाहिये।

प्रश्नकर्ता- पुष्पलता दीदी

प्रश्न- निरन्तर परमात्मा का स्मरण कैसे करूँ? उसकी क्या विधा है?

उत्तर- दिन भर हम सभी को बहुत से कार्य करने रहते हैं। जो भी कार्य हम करते हैं यह सोच कर करना कि इस कार्य को करने के लिये श्रीभगवान् ने हमारा चयन किया है। यह काम उनके लिये ही करना है। ऐसा सोचने से हर कार्य में हमें हर समय श्रीभगवान् का स्मरण रहता है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||